ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-11* December- 2017
Innovation The Research Concept

मानवाधिकार और स्त्री–विमर्श

सारांश

मानवाधिकार मानव के अस्तित्व, मानवीय–गरिमा और उसके विकास के लिए अपरिहार्य होते हैं। मानवाधिकार अहरणीय तथा सार्वभौमिक मानवाधिकारों से अभिन्न एवं अविभाज्य हैं। विश्व के अनेक हिस्सों में एक समय तक स्त्रियों के कोई अधिकार नहीं थे। भले ही तथाकथित सभ्य और सुसंस्कृत समाज उनके श्रमदान के फलस्वरूप ही अस्तित्व में था। ऐसे दुरूह समय में जब आधी आबादी को पशुओं से भी बदतर समझा जाता था, उन परिस्थितियों में स्त्रियों के लिए मानवाधिकारों की माँग करना जान जोखिम में डालने जैसा था। इसके बावजूद कुछ दुस्साहसिक लोगों ने अगली पीढ़ियों के लिए एक सुखद भविष्य की नींव रखी। भारत में भी गरिमापूर्ण जीवन की संभावना के संदर्भ में स्त्री–वर्ग आज भी संघर्ष की स्थिति में है। आज भूमंडलीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के फलस्वरूप नारी के जीवन में एक नये प्रकार का विरोधाभास देखने को मिल रहा है। एक ओर उसे सिर उठाने का मौका मिल रहा है तो दूसरी ओर उसे खामोशी की संस्कृति को ओढ़े रहने पर मजबूर होना पड़ रहा है। लिंगभेद से समाज संकटग्रस्त है, इसका संपूर्ण समापन नारी–मुक्ति–विमर्श के केन्द्र में होना चाहिए। गौरव, आत्मसम्मान और आत्मविश्वास के साथ जीना स्त्री का जन्मसिद्ध अधिकार है। मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य में स्त्रियों के अधिकारों के मूल्यांकन से ही स्त्री–विमर्श सार्थक हो सकता है।

मुख्य शब्द : प्रसंविदा, मानवाधिकार, समानाधिकार, बहुलतावाद, सार्वभौमिक, लैंगिक समानता, नारी–मुक्ति, पितृसत्तात्मक, विरोधाभासपूर्ण, असमानता, अर्द्ध–सामंती, स्वेच्छाचारिता, आध्यात्मिक शोषण, गणचिह्नवाद।

आलोक कुमार पाण्डेय
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
जयप्रकाश विश्वविद्यालय,
छपरा, बिहार

प्रस्तावना

स्त्रियों को विकसित बनाने के लिए उनका सशक्तिकरण ही सबसे कारगर तरीका है। यद्यपि वे अनादि काल से सम्यक्रूपेण सृजनकत्री की भूमिका का निर्वहन करती आयी हैं, तथापिवे आधुनिक युग में शिक्षक, वैज्ञानिक, खिलाड़ी, प्रबंधक, राजनेता, सेना–अधिकारी, पायलट, पर्वतारोही आदि के रूप में भी पुरूषों से बढ़कर उन्होंने अपने कौशल्य–प्रदर्शित किया है।यह सुखद है कि अपने तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद स्त्री अपनी उड़ान जारी रखे हुए है। इन सबके बावजूद स्त्रियाँ मानव विकास के समस्त सूचकों में पुरूषों से पिछड़ जाती है। उन्हें अनेक स्थानों पर असमानता, असुरक्षा और पराधीनता का सामना करना पड़ता है। स्त्रियों के हीत में स्वतंत्रता, समानता और सुरक्षा प्राप्त करने की दिशा में धरातल पर बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

अध्ययन का उद्देश्य

व्यवस्था में आमूल परिवर्तन के लिए सामाजिक आंदोलनों और विमर्शों की आवश्यकता होती है। इस प्रसंग में 'स्त्री विमर्श' के बौद्धिक स्तर पर विश्लेषण, संश्लेषण एवं मूल्यांकन से संपूर्ण भारत की स्त्रियों की वास्तविकता को समझने और उसकी समस्या को सुलझाने में सहायता मिल सकती है। इस अध्ययन से समाज में उनके योगदान का मूल्यांकन और स्थान निर्धारण की समस्या भी हल हो सकती है, साथ ही उनकी समस्याओं को चिह्नित करने एवं उनके समाधान की दिशा में मदद मिल सकती है।

परिकल्पना

महिलाओं का सशक्तिकरण बहुआयामी और संपूर्ण होना चाहिए। स्त्री–विमर्श महिलाओं को आत्म–सम्मान और आत्म–विश्वास प्रदान करने की दिशा में सामाजिक व बौद्धिक वातावरण तैयार कर महत्वपूर्ण योगदान देता है। स्त्री–विमर्श अपने मार्ग पर लगातार आगे बढ़ रहा है, चीजों को विश्लेषित कर रहा है साथ ही उसमें जो सर्वोतम प्राप्त हो सकता है उसे प्राप्त करने की

कोशिश भी कर रहा है। स्त्रियों के संदर्भ में सामाजिक विकास नीतियों द्वारा सहयोग और समर्थन देने के मार्ग में अनेक बाधाएँ रही हैं, प्रस्तुत शोधालेख से इन बाधाओं की पहचान करने एवं इनके प्रति इन्हें जागरूक करने में सहायता मिल सकेगी।

शोध–विधि

प्रस्तावित शोध में मननात्मक शोध की निरूपणात्मक, व्याख्यात्मक और मूल्यांकनपरक विधियों को अपनाया गया है। यहाँ मुख्य रूप से तथ्यपरक आलोचनात्मक विधि और शोधपरक वस्तुनिष्ठ विधि अपनायी गयी है।

शोध उपकरण

प्रस्तुत शोधालेख के लिए स्त्री विमर्श से संबंधित कृतियों का उपजीव्य ग्रंथ के रूप में उपयोग किया जाएगा, जबकि उनकी रचनाओं से संबंधित अन्य आलोचनात्मक सामग्रियों का उपयोग उपस्कर ग्रंथ के रूप में किया जाएगा। इन सबके अतिरिक्त संदर्भ–ग्रंथ के रूप में अन्य रचनाओं/समीक्षाओं/आलेखों/शोधालेखों/शोध–प्रबंधों का उपयोग किया जाएगा। शोधालेख को तैयार करने में हिन्दी साहित्य कोश, समाज विज्ञान विश्वकोष और हिन्दी के अभिव्यक्ति कोश (हिन्दी थिसारस) से भी सहायता ली जाएगी। अन्य सहायक सामग्रियों के लिए इंटरनेट का उपयोग किया जाएगा।

प्रदत्तों का विश्लेषण

मानवाधिकार आधुनिक अवधारणा है, लेकिन इसका भ्रूण इतिहास के गर्भ में पलता रहा है। प्राचीन सभ्यताओं की चादर में लिपटे होने के कारण वह सुरक्षित रह गया है। प्राच्य और पाश्चात्य दोनों क्षेत्रों में किसी–न–किसी रूप में इसके बीज मौजूद रहें हैं। आधुनिक ढंग के अधिकार के रूप में इसकी पहली झलक 'मैग्नाकार्टा' (1215 ई0) में मिलती है। इस दृष्टि से सत्रहवीं सदी के इंग्लैण्ड के इतिहास से रोशनी की कुछ किरणें झाँकती नजर आती हैं। अठारहवीं सदी की कुछ घटनाओं का मानवाधिकार की स्थिति पर अत्यन्त दूरगामी एवं सकारात्मक प्रभाव परिलक्षित होता है। आधुनिक विश्व पर उन घटनाओं का प्रभाव आजतक मौजूद है। 1776 ई0 में अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा के साथ ही मनुष्य के जीवित रहने, स्वतंत्र और सुखी रहने के अधिकार की सशक्त अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। फ्रांसीसी क्रांति (1789 ई0) के साथ ही मानव की समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की आकांक्षाएँ प्रबल रूप में सामने आती हैं। अमेरिका में इस दिशा में और प्रगति हुई। विश्व–युद्धों से त्रस्त मानव को संयुक्त राष्ट्रसंघ की 'मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा' (1948 ई0) से कुछ संबल मिला। इस घोषणा में स्वीकृत मानवाधिकारों का पल्लवन संयुक्त राष्ट्रसंघ की दो प्रसंविदाओं द्वारा किया गया। 'विकास का अधिकार' नवीन मानवाधिकार के रूप में सामने आया। 1993 ई0 में वियना की घोषणा से विकास और पर्यावरणीय आवश्यकताओं की पूर्ति के अधिकार को बल मिला। इसमें आतंकवाद को मानवाधिकार, मौलिक स्वतंत्रता और लोकतंत्र के लिए खतरनाक घोषित किया गया। बहुलतावाद, सहिष्णुता, महिलाओं, बालिकाओं, अल्पसंख्यकों, दिव्यांगों के मानवीय और अहरणीय अधिकारों को सुरक्षित और संरक्षित करने की बात कही गयी। इस घोषणा में कमजोर वर्गों की असुरक्षा, युद्ध, गरीबी और बलात्कार के प्रति चिंता व्यक्त की गयी है। इन्हें मानवाधिकार विरोधी घोषित किया गया है। शिक्षा का लक्ष्य मानवाधिकार की भावना को मजबूत बनाना होना चाहिए। वियना घोषणा में कन्याभ्रूण–हत्या, बाल–शोषण, वेश्यावृत्ति, यातना और अपहरण जैसी घटनाओं को अमानवीय घोषित किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ की उक्त घोषणाओं से वैश्विक स्तर पर मानवाधिकार को बढ़ावा मिला। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। भारतीय संदर्भ में कांग्रेस के गठन और सम्मेलन के साथ ही मानवाधिकार की चर्चा आम होने लगी थी। 'स्वराज' की मांग के साथ ही 'मानवाधिकार' की मांग भी जुड़ी हुई थी। भारतीय संविधान के प्रावधानों, संसद द्वारा बनाये गये कानूनों और न्यायालयों के आदेशों में भी मानवाधिकारों की झलक मिलती है। भारत में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के अनुसार राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और राज्य–स्तरीय मानवाधिकार आयोग के गठन की प्रक्रिया शुरू हो गई। इसके पूर्व भी भारतीय दण्ड विधान, दण्ड प्रक्रिया संहिता तथा अन्य कानूनों में मानवाधिकार को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता रहा है।

मानवाधिकार–संबंधी घोषणाओं, प्रसंविदाओं, अधिनियमों आदि के सिंहावलोकन से यह स्पष्ट हो गया है कि वैश्विक और राष्ट्रीय संदर्भों में मानवाधिकार आधुनिक युग की सबसे महत्त्वपूर्ण अवधारणा के रूप में सामने आया है। इस दृष्टि से फिलाडेलफिया सम्मेलन की घोषणा का एक अंश द्रष्टव्य है, ''सभी मनुष्य जन्म से समान है, उनके स्रष्टा ने उन्हें कुछ अहरणीय अधिकारों से संपन्न किया है; इन अधिकारों में जीवन, स्वतंत्रता तथा सुख की तलाश के अधिकार शामिल हैं। इन अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए सरकारों की स्थापना की गई जिनकी न्यायसम्मत सत्ता का स्रोत शासितों की सम्मति होती है। जब भी कोई सरकार, चाहे वह किसी प्रकार की हो, इन उद्देश्यों के लिए घातक बन जाती है, तब संबंधित जन–समाज को यह अधिकार है कि वह उस सरकार को बदलकर या मिटाकर ऐसी एक नई सरकार की स्थापना करे जो उस जन–समाज को सुरक्षा और सुख प्रदान करने की संभावनाओं से आपूरित सिद्धांतों की बुनियाद पर खड़ी हो और जिसकी सत्ता का संगठन तद्नुरूप किया गया हो।''[1]

मानवाधिकार के अंतर्गत वे सभी अधिकार आ जाते हैं जो मानव के अस्तित्व, मानवीय गरिमा और उसके विकास के लिए अपरिहार्य होते हैं। यही कारण है कि अधिकार–संबंधी सभी घोषणाओं, प्रसंविदाओं, अधिनियमों एवं न्याय–निर्णयों में मानवाधिकार की झलक मिल जाती है।

सीमोन द बोउवार ने कहा है, ''स्त्री–विमर्श स्त्री को 'व्यक्ति की गरिमा' और 'गौरव' दिलाने का विमर्श है। ...औरत अभी तक पैदा नहीं होती थी, बनाई जाती रही है।''[2] प्रसिद्ध आलोचक संजीव कुमार जैन के शब्दों में, ''स्त्री विमर्श का अर्थ है 'स्त्री' की परंपरागत 'छवि' और 'पहचान' से अलग एक नई 'पहचान' एक नई 'छवि' का निर्माण करना। स्त्री के अस्तित्व, उसके अधिकारों, उसकी

ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-11* December- 2017
Innovation The Research Concept

अस्मिता, उसके एक मानवीय इकाई के रूप में प्रतिष्ठित होने के संघर्ष को स्त्री विमर्श कहा जा सकता है।''[3]

स्त्री–विमर्श वर्तमान समय के महत्त्वपूर्ण विमर्शों में से एक है। वास्तव में किसी विषय या अवधारणा के बहस, चर्चा या बातचीत के माध्यम से किसी अन्य अभिलक्षित सिद्धांत या अवधारणा या विचारधारा तक पहुँचने की प्रक्रिया को विमर्श कहा जाता है। मानवाधिकार के आलोक में इस विमर्श पर विचार करना अत्यन्त दिलचस्प है। फ्रांसीसी क्रांति के बाद फ्रांस में 'मनुष्य एवं नागरिक के अधिकारों की उद्घोषणा' (1789 ई0) में समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व जैसे अधिकारों को शामिल किया गया। इसके बावजूद यह ध्यातव्य है कि ये अधिकार केवल पुरूषों के लिए थे, स्त्रियों के लिए नहीं, राज्य के नागरिकों के लिए थे, दासों के लिए नहीं। इस दृष्टि से शायद विचार ही नहीं किया गया। मानवाधिकार की दृष्टि से यह अन्यायपूर्ण था। यहीं मानवाधिकार का प्रश्न सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इस दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार–पत्र (1945 ई0) को महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है, क्योंकि इसमें व्यक्ति की गरिमा एवं महत्त्व को बनाये रखने के लिए पुरूष और स्त्री के समानाधिकार की बात कही गई है। मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा (1948 ई0) में नागरिक स्वतंत्रता का आधार लैंगिक समानता को बनाया गया। सामाजिक अधिकार का आधार भी लैंगिक समानता ही है। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा (1976 ई0) में लैंगिक भेद–भाव को अमान्य ठहराया गया है। इसमें सभी पुरूषों के साथ स्त्रियों को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों के उपभोग का समान अधिकार दिया गया है तथा इसके लिए सभी सदस्य राष्ट्रों को सहमत माना गया है।

यहाँ स्त्रियों के लिए समान वेतन, न्याय–संगत एवं अनुकूल परिस्थितियों के उपयोग, बच्चों के जन्म देने के पहले और बाद में उचित अवधि तक माँ को विशेष संरक्षण, कामकाजी महिला को सवैतनिक अवकाश एवं सामाजिक सुरक्षा जैसे अधिकारों को शामिल किया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों से संबन्धित अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा में भी लैंगिक भेद–भाव का निषेध किया गया है। इसे सभी सदस्य राष्ट्रों के लिए भी कार्यकारी माना गया है। नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों के उपभोग के मामले में स्त्री–पुरूष में भेद नहीं किया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ का वियना घोषणा (1993 ई0) अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसमें कहा गया है, ''महिलाओं और बालिकाओं के मानवाधिकार अहरणीय तथा सार्वभौमिक मानवाधिकारों से अभिन्न एवं अविभाज्य हैं। लिंग आधारित हिंसा, सभी प्रकार के लैंगिक संताप एवं शोषण मनुष्य की गरिमा एवं महत्त्व से असंगत हैं तथा उन्हें हर हालत में समाप्त कर देना चाहिए। .....बच्चों के शोषण एवं उत्पीड़न के निवारण के लिए सक्रिय तौर पर प्रयास किया जाना चाहिए। नवजात बालिकाओं की हत्या, हानिकर बालश्रम, बच्चों और अंगों की बिक्री, बाल वेश्यावृत्ति, बच्चों के लिए अश्लील लेखन तथा अन्य प्रकार के लैंगिक दुर्व्यवहार के खिलाफ प्रभावकारी उपाय करने की जरूरत है। राज्य ऐसे कानूनों एवं विनियमों को रद्द कर दें तथा ऐसे रीति–रिवाजों को मिटा दें जो बालिकाओं के खिलाफ भेद–भाव करते हैं और उन्हें हानि पहुँचाते हैं।''[4]

महिलाओं के मानवाधिकार की सुरक्षा की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1979 ई0 में एक अभिसमय को स्वीकार किया यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। इसे 'सेडा' [Convention on the elimination of all forms of descrimination against women."CEDAW"]के नाम से भी जाना जाता है। इस अभिसमय का पूरा नाम है– 'महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेद–भावों की समाप्ति का अभिसमय'। इसमें तीस अनुच्छेद हैं जो सर्वत्र महिलाओं के लिए समान अधिकारों की प्राप्ति हेतु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत सिद्धांतों तथा उपायों को बाध्यकारी बनाते हैं। महिलाओं के मानवाधिकार की सुरक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के अभिसमय में कहा गया है, ''महिलाओं के विरूद्ध किया जानेवाला भेद–भाव अधिकारों की समानता और मानवीय गरिमा के प्रति सम्मान का हनन करता है और महिलाओं की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन की भागीदारी में बाधक है।..... बच्चों के लालन–पालन में माता–पिता दोनों की भूमिका हो तथा समाज एवं परिवार में पुरूषों और महिलाओं की पारंपरिक भूमिका में परिवर्तन की आवश्यकता है।..... महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव का अर्थ है किसी प्रकार का भेद, बहिराव या प्रतिबंध जो लिंग के आधार पर किया जाता है और जिसका प्रभाव या उद्देश्य महिलाओं (विवाहित या अविवाहित) को राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक या अन्य क्षेत्र में मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं का उपयोग करने में बाधक हो।... किसी लिंग की हीनता या श्रेष्ठता या रूढ़िबद्ध भूमिकाओं पर आधारित पूर्वाग्रहों एवं परंपराओं तथा व्यावहारों की समाप्ति के लिए सामाजिक–सांस्कृतिक पद्धतियों में सुधार किया जाएगा और बच्चों के पालन–पोषण तथा विकास को पुरूष और स्त्री की साझी जिम्मेदारी मानी जाएगी।..... राज्य महिलाओं के व्यापार तथा वेश्यावृत्ति जैसे शोषण को रोकने हेतु कानून बनाने सहित सभी समुचित उपाय करेंगे।.... छात्राओं की छीजन दर को घटाना तथा अपरिपक्व तरीके से विद्यालय छोड़नेवाली लड़कियों और महिलाओं के लिए कार्यक्रम बनाना।... सभी मानवों के अहरणीय अधिकार के रूप में काम करने का अधिकार।...समान कार्य के लिए समान पारिश्रमिक का अधिकार।...सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य की सुरक्षा का अधिकार, विवाह करने के बारे में समान अधिकार, बाल–विवाह की अमान्यता, विवाह की न्यूनतम उम्र का निर्धारण, विवाह का पंजीकरण आदि से संबंधित कानून बनाना मानवाधिकार को सुरक्षित करने जैसे उपायों को अपनाना राज्यों का महत्त्वपूर्ण दायित्व होगा।''[5]

भारतीय संविधान में ब्रिटिश संविधान से 'विधि के समक्ष समानता' का सिद्धांत ग्रहण किया गया है। इसका आशय यह है कि राष्ट्र–राज्य का कानून सभी लोगों पर समान रूप से लागू होगा। इस दृष्टि से किसी को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। इसी प्रकार 'कानूनों की

समान सुरक्षा' जैसी अवधारणा अमेरिकी संविधान से ली गई है। इसका तात्पर्य यह है कि समान परिस्थितियों में सभी व्यक्तियों को कानून की समान सूरक्षा मिलेगी। इन समानताओं के होते हुए भी इनके कुछ अपवाद भी मौजूद हैं। यहाँ यह भी प्रावधान किया गया है कि यदि स्वयं संविधान में कोई विभेद प्रावधानित हो, तो उसे समता के अधिकार का उल्लंघन नहीं माना जाएगा। इस प्रावधान के अनुसार राज्य को अधिकार है कि महिलाओं, बच्चों, अनुसूचित जाति/जनजाति तथा सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की प्रगति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। इस व्यवस्था का सैद्धांतिक आधार यह है कि प्राचीन और मध्यकालीन सामंती व्यवस्था में वर्ण, जाति, रंग, धन, लिंग, स्थान, भाषा आदि के आधार पर या तो कुछ लोग विशेषाधिकार प्राप्त थे या कुछ लोग उससे पूर्णतः वंचित थे। इसलिए ऐसे वंचित वर्ग को विशेष सुविधा प्रदान कर समानता लाने का प्रयास करने पर बल दिया गया है। इस प्रकार के अपवाद को छोड़कर शेष स्थितियों में राज्य किसी नागरिक के साथ धर्म, लिंग, प्रजाति, जाति, जन्म–स्थान, भाषा आदि के आधार परभेदभाव नहीं करेगा। राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांत के अंतर्गत महिलाओं को विशेष रूप से संरक्षित और सुरक्षित किया गया है। इसमें प्रत्येक नागरिक से अपेक्षा की गई है कि वह महिलाओं के सम्मान को ठेस पहुँचाने वाली रीतियों का त्याग कर दे। दंड प्रक्रिया संहिता 1860 में भी महिलाओं के हित में ऐसे कानून शामिल हैं जो उनके मानवाधिकार को सुरक्षित करते हैं। इन सबके अतिरिक्त भारत में कुछ ऐसे कानून भी मौजूद हैं, जिनमें महिलाओं को अपने मानवाधिकार को सुरक्षित रखने की गारंटी दी गई है। न्याय–निर्णय में भी काफी कुछ शामिल है जो मावनाधिकार को सुरक्षित करता है।

नारी विमर्श के संदर्भ में पश्चिम की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। इसमें अमेरिका की भूमिका भी शामिल है। जैसा कि कनक मुखर्जी ने सरला माहेश्वरी की पुस्तक 'नारी प्रश्न' की भूमिका में स्पष्ट किया है, ''लेखिका ने अपनी पुस्तक 'नारी प्रश्न' में बड़े परिश्रम और निष्ठा के साथ समाज में महिलाओं की स्थिति के विषय में बहुत से तथ्यों का संग्रह करते हुए उनका वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उनका विश्लेषण ऐतिहासिक है तथा दृष्टिकोण अंतर्राष्ट्रीय है। नारी की गुलामी या पराधीनता के प्रश्न को वे किसी सीमित दायरे में नहीं देखती बल्कि सामाजिक विकास की समग्र धारा के साथ उसे जोड़कर देखती हैं। उन्होंने प्रतिक्रियावादी और प्रगतिशील शक्तियों के बीच के द्वन्द्व को उजागर किया है। आधुनिक सभ्यता के केन्द्र, यूरोप के देशों में नवजागरण के प्रारंभ से ही नारी–अधिकारों का प्रश्न उठ खड़ा हुआ था, यह उन्होंने बहुत–सी ऐतिहासिक घटनाओं के जरिये प्रमाणित किया है। इसी के साथ उन्होंने हमारे देश में महिलाओं की स्थिति तथा नारी–मुक्ति संग्राम का भी संक्षिप्त जायजा लिया है। इसके अलावा मौजूदा राजनीतिक परिस्थितियों में विभिन्न प्रतिक्रियावादी और धार्मिक तत्त्ववादी शक्तियों के हमलों को देखते हुए नारी आंदोलन के समक्ष जो नई चुनौतियाँ खड़ी हुई हैं, उन्हें भी श्रीमती माहेश्वरी ने बड़े ही सही ढंग से रखा है।''[6]

सरला माहेश्वरी ने वैश्विक परिवेश की चर्चा करते हुए भारत के सामाजिक–आर्थिक ढाँचे में नारी–उत्पीड़न के प्रश्न को अत्यंत संजीदगी के साथ उठाया है। उनकी मान्यता है कि आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण और ढांचागत समायोजन की नई आर्थिक–नीति ने महिलाओं के जीवन को दूभर बना दिया है। उनके अनुसार भारत के पूर्व–पूँजीवादी, अर्द्ध–सामंती उत्पादन संबंध के सामाजिक ढाँचे में तो यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था जातिवाद तथा धार्मिक तत्त्ववाद की विचारधारा के रूप में व्यक्त होती है। माहेश्वरीजी की यह भी मान्यता है कि औरतों के प्रति सामाजिक भेदभाव को समाप्त करके ही वे समाज में एक मनुष्य के रूप में आत्मसम्मान के साथ जी सकती हैं। उनके ही शब्दों में कहा जा सकता है, ''औरतों के प्रति सामाजिक भेदभाव के प्रश्न को मैं एक सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न समझती हूँ, क्योंकि यह सामाजिक भेदभाव ही औरतों को अन्दर से कमजोर, असहाय और डरपोक बनाता है। इसके चलते ही वह छोटे–से–छोटे सामाजिक जुल्म का विरोध करने में असमर्थ हो जाती हैं, आसानी से हर तरह के जुल्मों का शिकार बनती हैं। समस्या का यह एक बहुत ही जरूरी पहलू है, क्योंकि हम सिर्फ औरतों पर होनेवाली ज्यादतियों, बलात्कार, दहेज–हत्या या भ्रूणहत्या की तरह के अपराधों को रोकने की बात तक ही अपने को सीमित नहीं रख सकते।''[7]

सरला माहेश्वरी इसे केवल कानून व्यवस्था का मामला नहीं मानती हैं। वह मानती हैं कि इस प्रकार के जुल्म और हिंसा की वास्तविक जड़ें शोषण पर टिके हमारे समाज के अंदर है। इसका सीधा संबंध हमारे समाज के यथार्थ से है। उनकी यह भी मान्यता है कि जो समाज जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर टिकी हुई असमानताओं से भरा हुआ है, उसमें औरतों के प्रति समानता और न्याय पर टिका हुआ व्यवहार करना एक लंबे संघर्ष की अपेक्षा रखता है। वर्तमान सामाजिक ढाँचे में निजी संपत्ति और पितृसत्तात्मकता का वर्चस्व है, जो नारी के अस्तित्व, मानवीय गरिमा और विकास को प्रभावित कर रहा है। इस परिस्थिति में एक मिथक गढ़ लिया गया है कि नारी अपनी प्रकृति से ही सनातन रूप में निम्न योनि की रही है। समाज के अधूरे विकास के फलस्वरूप नारी की विरोधाभासपूर्ण छवि बन रही है। वह एक साथ ही देवी भी है और डाइन भी। इन दोनों छवियों के बीच उसकी मानवीय छवि दब गई है। नारी समाज का बहुत थोड़ा अंश अपनी मानवीय छवि को विकसित करने में सफल हो सकी है। पश्चिम भी इस विडंबना से मुक्त नहीं है। तीसरी दुनिया का देश तो इस समस्या से भयंकर रूप से ग्रस्त है। नारी आंदोलन और नारी विमर्श की कहानी अधूरी है। भारतीय समाज का विकास अधूरा और विरोधाभासपूर्ण है। साहित्य, समाजशास्त्र के साथ ही सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का क्षेत्र भी इस अधूरेपन का शिकार है। इन क्षेत्रों में विमर्श का दौर चल रहा है। नारी की अपनी अधूरी छवि के साथ जीना उसकी विवशता बन गयी है। इस छवि का निर्माण बड़े प्रयत्नपूर्वक किया गया है। इस मिथकीय स्वरूप के निर्माण में समाजविज्ञान, साहित्य और कला के साथ सामाजिक ढाँचे की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। नारी का देवी रूप उसके

प्रागैतिहासिककालीन मातृसत्तात्मक युग का अवशेष है, जबकि उसके मध्य युग की छवि कुछ और हो गई है। यहीं से नारी की विकृत छवि के निर्माण की प्रक्रिया का आरंभ हो जाता है। इस संदर्भ में सरला माहेश्वरी का कथन द्रष्टव्य है, ''मध्ययुगीन समाज काफी हद तक वर्तमान भारतीय समाज का भी एक हिस्सा बना हुआ है और आधुनिक पूँजीवाद के साथ मिलकर हमारे समाज को एक अलग ही विकृत रंगत दिये हुए है।''[8]

वर्तमान पूँजीवादी युग में, विज्ञान और लोकतंत्र के इस युग में भी नारी की स्थिति के संदर्भ में निश्चिंततापूर्वक कुछ कह पाना संभव नहीं है। भारतीय समाज के विकास के संबंध में के. दामोदरन का अभिमत है, ''एक अर्द्ध–विकसित, अर्द्ध–सामंती समाज से अधिक स्वतंत्रतावाले, आधुनिक, औद्योगिक राष्ट्र में रूपान्तरण से तात्पर्य केवल मौजूदा कल–कारखानों की संख्या में वृद्धि होना, अथवा नये बड़े पैमाने के यंत्रीकृत कारखानों का कायम हो जाना ही नही है। इसके लिए नये सामाजिक संबंध, नई आदतें और जीवन की नई पद्धति अपेक्षित है। इस रूपान्तरण के साथ ही जो तर्क द्वारा सिद्ध और प्रमाणित आधुनिक जो विश्वदृष्टिकोण आता है, वह पूँजीवाद से पहले के धार्मिक मताग्रहों, धर्म–संबंधी अंधविश्वासों और रहस्यवादी अन्तर्ज्ञान से मेल नहीं खाता। इस नये विश्वदृष्टिकोण में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य, भाईचारा, जनतंत्र और समाजवाद जैसे नये मूल्यों का समावेश होता है। दूसरे शब्दों में अधिक नियोजन, औद्योगीकरण, राष्ट्रीयकरण, कृषि–सुधार तथा गुटनिरपेक्षता अपने आप में लक्ष्य नहीं है। वे एक ऐसी श्रेष्ठतर सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के साधन होते हैं, जिनमें विज्ञान, प्रविधि, कला और साहित्य के वरदान समस्त जनता को प्राप्त होते हैं– ऐसी व्यवस्था जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य के आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक शोषण का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता, और जिसमें भौतिक संपदा की बहुलता का उपयोग करके मनुष्य अपने व्यक्तित्व का पूर्णतम विकास करता है। किंतु, भारत का पुराना सामाजिक ढाँचा पूरी तरह से नहीं तोड़ा जा कसा है, जिससे कि वह वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रास्ता तैयार कर सके। विकास का क्रम इतना धीमा और असमान है कि हमारे देश के गाँवों और शहरों में आधुनिकता के साथ आदिमकालीनता भी घुली–मिली है। क्षेत्रों का पिछड़ापन नियोजन में असंतुलन उत्पन्न करता है और जनता में आम असंतोष को बढ़ा देता है। उन लोगों में, जो नवीनता के संपर्क में आये हैं और परिवर्तन चाहते हैं, तथा उनलोगों में जो औद्योगीकरण से केवल नाम मात्र को प्रभावित हैं और अब भी अतीत से चिपके हुए हैं, अंतर है। विचारधारा के क्षेत्र में भी विज्ञान और जनतंत्र के आधुनिक विचारों के साथ–साथ गणचिह्नवाद, सर्वात्मवाद और जादू–टोने के पथों का सहअस्तित्व है।''[9]

वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था नारी–स्वतंत्रता की गारंटी नहीं दे सकती है। इस संबंध में सरला माहेश्वरी का आकलन है, ''जहां तक नारी स्वतंत्रता के सिलसिले में पूँजीवाद का सवाल है, वह भी इसकी कोई गारंटी प्रदान नहीं कर सकता। सामाजिक विकास की धारा ही इसका गवाह है कि मातृसत्ता का विलोप अर्थात् नारी की पराधीनता निजी संपत्ति की उत्पत्ति के साथ जुड़ी रही है। पूँजीवादी युग में यही निजी संपत्ति अपने चरम रूप में व्यक्त होती है। यही वजह है कि इस काल में नारी की पराधीनता पूँजीपतियों का माल बनकर बिल्कुल नग्न रूप में जाहिर होती है।''[10] वर्तमान युग में नारी दोहरी मार झेल रही है। एक ओर पुराने पितृसत्तात्मक समाज की स्वेच्छाचारिता है और दूसरी ओर उपभोक्तावादी संस्कृति की निरंकुशता। इस संदर्भ में नारीवादी लेखिका कात्यायनी का कथन है, ''संक्रमणकालीन भारतीय समाज में स्त्रियों की पीड़ा दोहरी है। संयुक्त परिवार के ढाँचे के टूटने, नाभिक परिवारों के बढ़ते जाने और आंशिक सामाजिक आजादी के बावजूद मूल्यों–मान्यताओं के धरातल पर पितृसत्तात्मक स्वेच्छाचारिता को भी भुगत रही है और उपभोक्तावादी संस्कृति की नयी नग्न निरंकुशता को भी।''[11] पश्चिम में नारी का संघर्ष जारी है। पश्चिमी जगत में मताधिकार की मांग के साथ नारी आंदोलन का आरंभ हुआ। आंदोलन की दूसरी लहर का आरंभ फ्रांसीसी दार्शनिक और साहित्यकार 'सिमोन द बुआ' के इस विचार के साथ हुआ कि स्त्री जन्म से नहीं होती, बल्कि वह बनायी जाती है। इस आंदोलन से जुड़ी नेत्रियों का विश्वास था कि अपने अधिकार के लिए उन्हें सैद्धांतिक और व्यावहारिक लड़ाई स्वयं लड़नी होगी। इस संदर्भ में ललित जोशी का विचार है, '''वैयक्तिक ही राजनैतिक है' जैसी बुलंद घोषणा कर दूसरी लहर के आंदोलनकारियों ने नारी–जिस्म के शोषण, मातृत्व, प्रजनन, सौंदर्य प्रतियोगिताओं और विज्ञापन उद्योगों को सार्वजनिक बहस का दर्जा प्रदान किया। कालान्तर में नारीवाद साहित्य के साथ–साथ सिनेमा में नारी बिम्ब की प्रस्तुतियों की जाँच करने लगा।''[12]

बाजारवाद द्वारा स्त्रियों का दोहन और शोषण पर नारीवादी चिंतक सविता सिंह का विचार द्रष्टव्य है, ''स्त्री के शरीर का वस्तुकरण बाजार करता है। उस वस्तुकरण की प्रक्रिया में वह उस शरीर को आजादी देता है ताकि उसका शोषण कर सके। अगर स्त्री परिवार में बंधी रहेगी, अगर उसे बुर्के में ढंक कर रखिएगा तो वह बाजार के किसी काम की नहीं। उसके शरीर और लैंगिकता को बाजार बेंचता है। जो स्त्रियाँ समझती हैं कि उनको बाजार से थोड़ी बहुत आजादी मिल रही है तो वह सीमित आजादी है, वह वहीं तक के लिए है जहाँ तक मुनाफा मिल रहा है। इससे अलग कोई स्त्री समझती है कि बाजार उसे मुक्त करता है तो वह बहुत बड़ी गलतफहमी में है।बाजार किसी को मुक्त नहीं करता। बाजार सिर्फ मुनाफा तैयार करता है।''[13]

भूमंडलीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के फलस्वरूप नारी के जीवन में एक नये प्रकार का विरोधाभास देखने को मिल रहा है। एक और उसे सिर उठाने का मौका मिल रहा है तो दूसरी ओर उसे खामोशी की संस्कृति को ओढ़े रहने पर मजबूर होना पड़ रहा है। इस संदर्भ में सुनिता गुप्ता का मत है, ''भूमंडलीकरण अपने साथ कई तरह के विरोधाभास लाता है। एक तरफ तो इसने लोगों की आय में अप्रत्याशित वृद्धि की, किन्तु दूसरी तरफ इसने असमानता को भी बढ़ावा दिया। इसी प्रकार स्त्री–जीवन पर पड़नेवाला इसका प्रभाव भी पर्याप्त जटिल है।

भूमंडलीकरण ने स्त्रियों को एक साथ सबलीकृत और शोषित दोनों ही किया है। भूमंडलीकरण की उदार भूमि वैयक्तिकरण को पल्लवित करती है जो पारंपरिक मूल्यों, खासतौर पर पितृसत्तात्मक मूल्यों पर चोट पहुँचाती है। किन्तु मूल रूप से पितृसत्तात्मक समाज की श्रेणीगत व्यवस्था में स्त्रियों की अधीनस्थ स्थिति के कारण उसी व्यवस्था की शोषण पद्धति को आगे बढ़ाती है। नारीवाद को इस नयी व्यवस्था में सिर उठाने का मौका तो मिला पर भूमंडलीकरण ने उपभोग को बढ़ावा देनेवाले जिस बाजार को जन्म दिया उसने स्त्री की आवाज को खामोश भी किया है।''[14]

समकालीन आधुनिक व कामकाजी स्त्रियों की स्थिति का वर्णन करते हुए सुप्रसिद्ध आलोचक देवशंकर नवीन ने महत्त्वपूर्ण कवि राजकमल चौधरी के कविता के संदर्भ में वर्णन करते हुए कहा है, ''प्राण–रक्षा हेतु शील, अथवा शील–रक्षा हेतु प्राण दांव पर लगाए रखती हैं, मन का समर्थन न रहने पर भी प्राण रक्षा के लिए शील–बिक्री करती हुई चीख उठती हैं। ...नारियाँ आंगन–घर, हाट–बाजार, क्लब–सोसाइटी, बार–हाउस– हर जगह जाती हैं, ठसक और आत्मविश्वास के साथ जाती हैं। उन्हें आत्मशक्ति और जिम्मेवारियों की पूर्ति के लिए पैसे चाहिए, पैसे के लिए नौकरी, नौकरी की रक्षा के लिए बॉस की कृपा, समाज में निष्कलुश बने रहने के लिए कंट्रासेप्टिव्स गोलियां चाहिए। जिंदगी और जिम्मेवारियों के चक्र को इतने कम समय में इतनी तिकड़मों से खींचने के लिए तैयार होने में भारत की नारियों को जिस मानसिक यातना से गुजरना पड़ा होगा, उसकी कल्पना कौन कर सकता है।''[15]

विश्व का कोई भी राष्ट्र, समाज एवं परिवार खुशहाल और समृद्ध नहीं हो सकता है यदि उसकी आधी आबादी स्वतंत्रता, सम्मान और खुशी से वंचित हो। विश्वभर में स्त्रियाँ भेदभाव का शिकार हैं, परन्तु भारत की स्थिति इन मामलों में और निचले स्तर की है। स्त्रियों के लिए भारत में विश्व का सबसे प्रतिकुल महिला–पुरूष अनुपात है।[16] महिलाओं के लिए जीवन प्रत्याशा पुरूषों से कम है। स्त्रियों की शिक्षा, स्वतंत्रता और स्वास्थ्य का स्तर भी पुरूषों के मुकाबले बहुत कम है।श्रम के मामलों में भी स्त्रियों की श्रमावधि पुरूषों की तुलना में ज्यादा है। स्त्रियों की तुलना में पुरुष शारीरिक दृष्टि से ज्यादा सबल हैं इस प्रश्न पर प्रसिद्ध नारीवादी चिंतक सविता सिंह का कथन है, ''एक स्त्री जानवरों से भी ज्यादा काम करती है।... स्त्रियों में श्रम की गहनता और अधिकता गाय और बैल से भी ज्यादा है।''[17] स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित स्थितियों की सामाजिक व नियति के प्रति जागृति के संदर्भ में प्रसिद्ध साहित्यकार राजेन्द्र यादव का कथन द्रष्टव्य है, ''व्यक्तिगत स्वतंत्रता वैयक्तिक मूल्यों के अनुसार जीवन यापन की प्रथम शर्त्त है और इस प्रक्रिया में स्त्री शिक्षा, जागृति, स्वतंत्रता आंदोलनों और बदलती परिस्थितियों में अपने आप को पहचानने की कोशिश करती रही है।''[18]शारीरिक सौंदर्य को लेकर भी स्त्री को अपमानित किया जाता है। जबकि मानव के सौंदर्य का मूल्यांकन फैशन की दृष्टि से न करके स्वास्थ्य की दृष्टि से होना चाहिए। ऑस्ट्रेलिया की स्त्री–विषयक विचारक जर्मेन ग्रीयर ने स्त्री–सौंदर्य विषयक विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है, ''स्त्री–सौंदर्य को वस्तु के रूप में आँकना उसका सबसे बड़ा अपमान है। जबकि वह देह या बुद्धि के रूप में पुरूष के समकक्ष होती है। ...पुरूष अपने साथी को नहीं बल्कि उसके अंगों से प्रेम करता है।''[19]पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री–सौंदर्य की अनिवार्यता पर ज्यादा बल दिया जाता है। इसी प्रसंग में मेरी वोल्टसनक्राफ्ट का मत द्रष्टव्य है, ''सुंदरता स्त्री का राजदंड है। बचपन से ही यह सीखते हुए मानस खुद को शरीर के अनुरूप ढाल लेता है और अपने सुनहरे पिंजरे में घूमता सिर्फ अपने कारागार को सजाना चाहता है।''[20]जापान में नारी–मुक्ति की पैरोकार कोनो तायको एक नए स्वस्थ समाजिक परिवेश का निर्माण करना चाहती हैं। वे स्त्री–सौंदर्य के अनैतिक आग्रह को रेखांकित करते हुए कहती हैं, ''हमें अपने लिए एक नए समाज की रचना करनी थी। युवा पीढ़ी को यह बताना था कि वे सिर्फ एक सुन्दर चेहरा या देह भर नहीं हैं।''[21]

नारी विमर्श की दिशा क्या हो? यह प्रश्न आज का अहम प्रश्न बन गया है। विकास के कार्यक्रम को कैसे सही दिशा की ओर प्रेरित किया जाय?– यह प्रश्न भी इसके साथ संलग्न है। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति पर विचार करते हुए नीरा देसाई और उषा ठक्कर ने अपनी पुस्तक में लिखा है, ''1981 में नारी अध्ययन पर प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन ने नारी अध्ययन के उद्देश्यों को परिभाषित हुए कहा कि सामाजिक यथार्थ की ज्यादा व्यापक और सूक्ष्म समझ आवश्यक है। नारी अध्ययन को केवल नारियों के बाबत अध्ययन या नारी विषयक सूचनाओं तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि इसे सामाजिक और अकादमिक विकास के महत्त्वपूर्ण उपकरण के तौर पर लिया जाना चाहिए। स्वास्थ्य, रोजगार, मीडिया में नारी की प्रस्तुति और सार्वजनिक तथा निजी स्थानों पर नारी के प्रति हिंसा के विस्फोट जैसे मुद्दे जब नारी विषयक मुद्दे बनने लगे, तब विकासवादी नीति के प्रति आशावादी दृष्टिकोण नकारात्मक रूप लेने लगा। आगे चलकर इस विश्वास को भी धक्का लगा कि विकासात्मक रणनीति, उन प्रभावों को नष्ट कर देगी जो सबके कल्याण में बाधा बनेगी। विकास की प्रक्रिया में नारी एवं अन्य कमजोर वर्गों की उपेक्षा जैसे मुद्दे सामने आने लगे और विकास संबंधी बहस अब विकास के विशिष्ट स्वरूप और ढाँचागत संरचना जिसके भीतर उक्त विकास घटित हो रहा है, पर केंद्रित हो गयी। इस प्रकार 'लिंग' एक वर्ग तथा विश्लेषण की एक इकाई, दोनों रूपों में उभरकर सामने आया।''[22]

आजादी को न तो जबरदस्ती बेंचा जा सकता है और न ही दिया जा सकता है। यह स्वयं ही हासिल करने की चीज है। डॉ. अम्बेडकर ने कहा था, ''शोषित को शोषण की पहचान करवाना जरूरी है, विद्रोह करना तो वह अपने आप सीख जाएगा।''[23]फ्रांसीसी स्त्रीवादियों ने साहित्य को केंद्र में लाते हुए कहा है, ''लिखना स्त्री के लिए स्वतंत्र होना है।''[24]साहित्य प्रत्यक्ष रूप से हमारा सांस्कृतिक परिदृश्य का निर्माण करता है। साहित्य स्त्री–मुक्ति की दिशा में महत्त्वपूर्ण साधन हो सकता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समाज के सभी वर्गों के विकास के लिए मानवाधिकार की अपरिहार्यता स्पष्ट है। समाज में अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण नारी ऐसे अनेक अधिकारों से वंचित रहने के कारण पिछड़ गई है। ध्यातव्य है कि परिवर्तित होते समय के साथ स्त्रियों के कदम से कदम मिलाते हुए पुरूषों को भी बदलना होगा, अन्यथा एक बहुत बड़ा हिस्सा स्त्रियों के जीवन का अंधेरे में डूबता रहेगा। जिससे पूरी मानवजाति कलंकित हुए बिना नहीं रह सकती है। तभी नारी विमर्श की सफलता नारी के सर्वांगीण विकास के साथ ही समाज का संपूर्ण व सार्थक विकास के साथ प्राप्त हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शर्मा, सुभाष : भारत में मानवाधिकार, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, चौथी आवृत्तिः 2014, पृ. सं. –01–02,*
2. *सिंह, नामवर : आलोचना, जनवरी–मार्च 2013, पृ.सं. –101,*
3. *उपरिवत्, पृ.सं.–101,*
4. *शर्मा, सुभाष : भारत में मानवाधिकार, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, चौथी आवृत्ति : 2014, पृ. सं. –24–26,*
5. *उपरिवत्, पृ.सं.–74–79,*
6. *माहेश्वरी, सरला : नारी प्रश्न, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण : जुलाई 1998, पृ.सं. –09–10,*
7. *उपरिवत्, पृ.सं.–98,*
8. *उपरिवत्, पृ.सं.–85,*
9. *दामोदरन, के. : भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली, तीसरा संस्करण : जून 1982, पृ.सं.–505–506,*
10. *माहेश्वरी, सरला : नारी प्रश्न, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण : जुलाई 1998, पृ.सं.–85,*
11. *सं. राजकिशोर, स्त्री, परंपरा और आधुनिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1999, पृ.सं. –145,*
12. *जोशी, ललित : बॉलीवुड पाठ : विमर्श के संदर्भ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2012, पृ.सं.–92,*
13. *सहाय, सं. संजय : हंस, मार्च 2016, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.–40,*
14. *स्त्री–चेतना के प्रस्थान–बिंदु : सुनीता गुप्ता, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2010, पृ.सं. –126,*
15. *परवीन, सं. फरहत : आजकल, सितंबर 2010, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.सं.–6,*
16. *कच्छल, दीपिका : योजना, वर्ष : 60, अंक–9, सितंबर 2016, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.सं.–9,*
17. *सहाय, सं. संजय : हंस, मार्च 2016, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.–37,*
18. *यादव, राजेन्द्र : आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2001, पृ. सं.–117,*
19. *सहाय, सं. संजय : हंस, अक्टूबर 2013, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.–90,*
20. *उपरिवत्, पृ.सं.–90,*
21. *शेखर, शशि : कादम्बिनी, मार्च 2015, हिन्दुस्तान मीडिया वेंचर्स लिमिटेड, गौतमबुद्ध नगर, उ.प्र., पृ.सं. –15,*
22. *भारतीय समाज में महिलाएँ : नीरा देसाई एवं उषा ठक्कर, अनुवाद– डॉ. सुभी धुसिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति : 2014, पृ.सं. : बारह (परिचय)।*
23. *अरोड़ा, सुधा : एक औरत की नोटबुक, मानव प्रकाशन, कोलकाता, पहला संस्करण : 2010, पृ.सं. –10,*
24. *सहाय, सं. संजय : हंस, मार्च 2016, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.–40,*